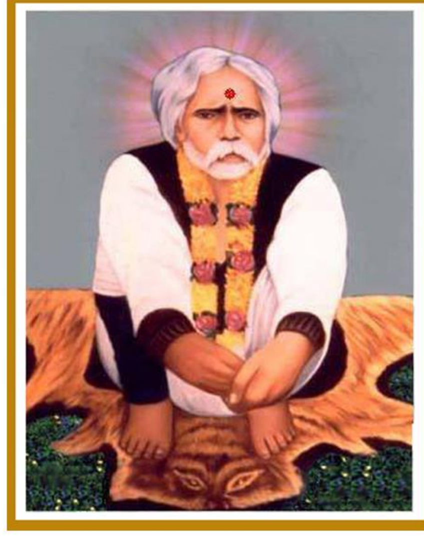


OM SHRI GURU PARAMATMANE NAMAH

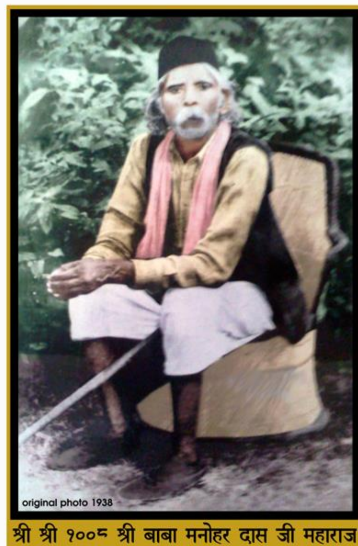
MANOHAR JIVAN DARSHAN

SHRI SHRI 1008 SHRI MANOHAR DAS AGHORI

जनम (प्रगटीकरण) - Birth (Manifestation)
भाद्रपद शुक्ला - Bhadrapada Shukla
जलझुलनी एकादशी - Jaljulni Ekadashi
रात्रि ११ बजे पुष्य नक्षत्र में - 11 pm in the constellation Pushya
सम्वत् १९५२ (सन् 1894) - Samvat 1952 (AD 1894)

सत्यलोकवास (निर्वाण) - Satyalokwas (Nirvana)
अगहन सुदी ६ मंगलवार - Agahan Sudi 6 Tuesday
सुबह ५ बजे - 5 am
सम्वत् २०१५ (16 दिसम्बर 1958) - Samvat 2015 (16 December 1958)

WWW.AGHORI.IT





This book is the cleaning job done on photocopies of an original book, now unobtainable, recovered by Radhika Dasi Aghori.
Some parts of the book were not legible necessitating a restoration.

In memory of Baba Manohar Das Ji, Baba Kishan Das Aghori guru's.

With love and devotion
Govinda Das Aghori

Questo libro è il lavoro di pulizia fatto su delle fotocopie di un libro originale, ormai introvabile, recuperato da Radhika Dasi Aghori.
Alcune parti del libro non erano ben leggibili rendendo così necessario un restauro.

In ricordo di Baba Manohar Das Ji guru di Baba Kishan Das Aghori.

Con amore e devozione
Govinda Das Aghori

अध्याय-4

।।ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः।।

बाबा मनोहरदास, जीवन-दर्शन

गुरु वन्दना

ॐ गुरुदेव ब्रह्म सच्चिदानंद स्वरूप,

आनन्द दाता कल्याणकारी।

अग्नि में, ज्योति में, प्रकाश में,

अजर-अमर अवनाशी।

घट-घट के वासी।।

निराकार निर्विकार

सर्वाधार अन्तर्यामी,

अलख-निरंजन भवमय भंजन,

संकट मोचन भय हारी।।

देवेश्वर योगेश्वर

प्रणेश्वर परमेश्वर,

ईश्वर।।

ॐ गुरुदेव-ब्रह्म, सच्चिदानंद आनन्दकंद

भगवन नमो नमः।।

दोहा– *गुरु मूरत मुख चन्द्रमा, सेवक नयन चकोर।*

अष्ट प्रहर निरखत रहो श्री गुरु चरनन की ओर।।

अपने गुरुदेव को "ब्रह्मस्वरूप" मानकर यह प्रार्थना हुजूर बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज स्वयं बोला करते थे। इसके बाद बाबा के शिष्य श्री नारायणदास जी एवं श्री कुन्दनदास जी भी गुरुदेव की पूजा के समय यही प्रार्थना बोला करते थे।

इस प्रार्थना से बाबा श्री मनोहरदास के अध्यात्म दर्शन की कुछ झलक मिलती है। वे ईश्वर के निर्गुण निराकार रूप के उपासक थे। उनके मतानुसार वह सत् चित एवं आनन्द स्वरूप है तथा घट-घट का वासी है, संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं, जहाँ ईश्वर का वास नहीं हो। ईश्वर का कोई आकार नहीं वह निराकार

है और संसार के जितने भी घट-घटादि पदार्थ हैं उन सब में समान रूप से वह व्याप्त हो रहा है। इस संसार और शरीरों में जो जन्म-मृत्यु वृद्धि और बुढ़ापा आदि विकार तथा काम, क्रोध, मद, मत्सर लोभादि जो विकार देखने को मिलते हैं उन विकारों का ईश्वर में सर्वथा अभाव है इसलिए वह निर्विकार है। वह तत्व स्वसंसार का आधार है अखिल ब्रह्माण्ड उसके अन्दर उसी प्रकार स्थित है जैसे गूलर के वृक्ष पर सहस्त्रों फल लटके रहते हैं अतः ईश्वर को "सर्वाधार" कहा गया है। दूसरे शब्दों में सब कुछ उसके अन्दर है और 'वह' सबके अन्दर व्याप्त है, इसलिए उन्हें "अन्तर्यामी" कहा गया है। गुरुदेव, ब्रह्म के जिस रूप से अधिक प्रमाणित दिखाई देते हैं वह "अलख निरंजन" रूप। अलख शब्द का अर्थ है जिसे देखा न जा सके या जो इन चर्म चक्षुओं का विपय न हो, जिसे इन माया कृत नेत्रों द्वारा न देखा जा सके और "निरंजन" शब्द का तात्पर्य है - निः + रंजन जो माया से पूर्णतः परे हो जहाँ प्रलय महाप्रलय की भी पहुँच न हो, अर्थात् माया से रहित एकमात्र शुद्ध ब्रह्म। जब कुछ नहीं था तब भी "निरंजन" शेष था। अतः इस पद से ब्रह्म की सर्व उपाधियों से रहित स्थिति का वर्णन है। गुरुदेव बावा मनोहरदास जी महाराज अकसर एक प्रार्थना का पद और भी गुनगुनाया करते थे।

निरंजन को नमस्कार,
नमो गुरुदेव को,
गनपति और फन पति,
सरस्वती जी को प्रणाम है॥"..........

इस पद में भी सबसे प्रथम "निरंजन" को नमस्कार किया जाता है और उस निरंजन तत्व के प्रथम साकार रूप गुरुदेव को द्वितीय नमस्कार है लेकिन यहाँ यह भ्रम नडीं पाल लेना चाहिए कि गुरुदेव का स्थान गौण है। वास्तविकता यह है कि जो तत्व "निरंजन" माया से रहित था उसी ने अपनी इच्छा से नर रूप धारण कर लिया। अतः "निरंजन" और गुरुदेव की एकता ही है। गुरुदेव संसारी लोगों को मुक्ति का रहस्य बतलाते हुए कहा करते थे कि अगर जन्म-मरण और आवागमन से छूटना है तो उसका एकमात्र रास्ता यही है कि हमें ईश्वर के मायाहित रूप की उपासना करनी चाहिए--

"मोक्ष मुक्ति जो चहत हो,
तजो कामना काम।
मन इच्छा को भेंट कर,
भजो निरंजन नाम॥"

अतः "निरंजन" पद उस शुद्ध ब्रह्म का रूप है, जहाँ मन बुद्धि किसी की भी पहुंच नहीं, जो माया से सर्वथा रहित है। गुरुवन्दना का सार यह है कि गुरुदेव जो साक्षात नर रूप में "हरि" ही हैं। जिनके अनेक रूप हैं, यया वे देवेश्वर हैं, सभी

देवताओं के भी ईश्वर और समस्त योगियों के भी ध्येय रूप योगेश्वर हैं, समस्त प्राणियों आत्म रूप से प्राणेश्वर हैं, परमेश्वर एवं ईश्वर भी वे ही हैं जीवों को परमानन्द का दान कर उन्हें सव संकटों एवं भयों से मुक्त कर उनका परम कल्याण करने वाले आनन्द कंद भगवान को वारम्वार प्रणाम है। जो भाव इस गुरु वन्दना में है व सब वेदों का सार है। वेदों में ईश्वर का जो स्वरूप वर्णन किया गया है वह इस भाव से युक्त है। रामचरित्रमानस के वालकाण्ड में "शिव" पार्वती को उस परम तत्व का बोध कराते हुए कहते हैं।

आदि अन्त कोउ जासु न पावा। मति अनुमानि निगम अस गावा॥
बिन पद चलई सुनई बिन काना। कर विनु करम करई बिध नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। विनु बानी वकता बड़ जोगी॥
तन बिन परस नयन विनु देखा। ग्रहई घ्रान बिनु बास असेखा॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाई नहिं वरनी॥............

इस प्रकार उस ब्रह्म का आदि अन्त न वेद जानते हैं, और न योगीजन ही, उसका जो प्रभाव है। सब प्रकार से अलौकिक है। संसार में ऐसा कोई स्थान नहीं जहाँ पर भगवान नहीं हो अर्थात् वे सभी स्थानों पर व्याप्त हैं इसलिए वे "घट-घट के वासी" और अन्तर्यामी नामों से कहे गए हैं। रामचरित मानस में एक प्रसंग आता है कि जब रावण के अत्याचारों से समस्त प्राणी दुःखी हो गए और संसार में आसुरी सम्प्रदाय का जोर हो गया। यहाँ तक कि पृथ्वी माता भी उन पापियों के अत्याचारों से पीड़ित हो गई तो देवगणों को साथ लेकर ब्रह्मलोक जाकर अपनी व्यथा रोकर ब्रह्मा जी को सुनाई। ब्रह्मा जी ने पृथ्वी को ढांढस बंधाया और कहा–

सो.– धरनि धरहि मन धीर कह विरंचि हरपद सुभिरू।
जानत जन की पीर, प्रभु भंजिहि दारूण विपति॥ [बा. 184]

"हे पृथ्वी! तुम धैर्य धारण करो, भगवान अपने भक्तों की पीड़ा जानते हैं वे अवश्य ही हमारी इस दारूण विपत्ति से रक्षा करेंगे। हमें उनके चरण-कमलों का ध्यान करना चाहिए।" ऐसा कहकर सभी देवताओं के साथ विचार करने लगे कि प्रभु कहाँ मिलेंगे? कोई उन्हें वैकुण्ठ वासी बताकर वहीं चलने को कहते, तो कुछ कहते की श्री हरि क्षीर सागर में विराजते हैं। हमें वहीं चलना चाहिए। इस प्रकार एक साश्वत प्रश्न पर विचार विमर्श होने लगा कि "ईश्वर कहाँ रहते हैं ?" हमें ईश्वर की प्राप्ति हेतु कहाँ जाना चाहिए? अपने-अपने विवेकानुसार सभी अपने विचार प्रकट करने लगे। अन्त में ब्रह्माजी की नजर भगवान शिव पर पड़ी, जो पास ही ध्यान मग्न बैठे थे। भगवत् प्राप्ति हेतु उनके विचार पूछे गये। भगवान शिव जो भगवद् रहस्य के परम ज्ञाता हैं, उस समय देवताओं से अपना मत व्यक्त करते हुए ऐसा बोले–

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम से प्रकट होहिं मैं जाना।
देस काल दिसि विदिसिहु माहीं। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं॥

अग जग में सब रहित विरागी॥ प्रेम ते प्रभु प्रगटई जिमि आगी॥

अर्थात भगवान सर्वत्र समान रूप से व्याप्त हैं, कोई भी देश, और भूत-भविष्य और वर्तमान कोई भी समय ऐसा नहीं कि जब प्रभु न हो। भगवान प्रत्येक स्थान पर, प्रत्येक समय समान रूप से उपस्थित रहते हैं। समय और स्थान रूप जड़ संसार में परिवर्तन होता रहता है लेकिन "अलख निरंजन, भव भय भंजन" प्रभु जो निर्विकार है में कोई परिवर्तन नहीं। वह आज भी है, और जिस प्रकार भगवान अव और आज हैं उसी प्रकार कल भी रहेंगे क्योंकि वे अजर अमर अविनाशी हैं। बाबा महाराज के उपदेशों की प्रमुख बात यह थी कि वे अपने "हरि-रूप गुरुदेव" को सर्वत्र व्याप्त मानकर हमेशा उस भाव से भावित बने रहते थे? उनकी जुवान पर हमेशा "ओम् अलख पुरुष मूर्ति" ॐ गुरुदेव ब्रह्म, सच्चिदानंद आनन्द दाता, कल्याणकारी"। का नाम रहता था। इस प्रकार की धारणा से वे स्वयं भी ब्रह्म-स्वरूप हो गए। "बाबा महाराज का यह मानना था कि जब तक जीव पूर्ण समर्पण नहीं करता उसे उस तत्व का अनुभव नहीं हो सकता, कुछ पाने के लिए जव संसार में कुछ खोना (त्याग) जरूरी है। उसी प्रकार ईश्वर (सब कुछ) को पाने के लिए पूर्ण त्याग और समर्पण की आवश्यकता होती है। जब तक थोड़ा भी "मैं पन" (अहंकार) है तब तक उसे ब्रह्म का साक्षात्कार नहीं हो सकता, उसके लिए अपना "नामो-निशा" मिटाना होगा।

पहले जो अपना नामो-निशा मिटावे।
फिर उसकी पूरन ब्रह्म साफ दिखलावे॥
खुदी के समाप्त होने पर ही खुदा का दीदार सम्भव है।

दोहा— *जब मैं था तब हरि नहीं, अब हरि हैं मैं नाँय।*
प्रेम गली अति सांकरी तामे दोइ न समाँय॥

इस प्रकार गुरुदेव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज की गुरु वन्दना से उनके आध्यात्म दर्शन की स्पष्ट झलक मिलती हैं। वे ईश्वर को गुरु रूप में अपना इष्ट देव मानते थे। संसार में सर्वत्र जड़ चेतन में अपने गुरुदेव (ईश्वर) को व्याप्त समझकर उनकी अभिन्न भाव से पूर्ण समर्पण भाव से आराधना करके स्वयं ब्रह्म लीन हो गए और संसार को भी उस परमेश्वर को प्राप्त करने का क्रियात्मक ज्ञान दे गए। वे एक महान् संत थे सच्चे दिल से श्रद्धा रखने वालों को आज भी प्रेरणा और साधना के श्रोत हैं। उनके चरित्र कथन करने के लिए मैं अपनी लेखनी को भी धन्य और पवित्र अनुभव करता हूं। यद्यपि उनका महान् व्यक्तित्व और कृतित्व वर्णन से परे की वस्तु हैं।

दोहा— ***समुदर की श्याही करूं, लेखनि सब बनराय।***
सकल अवनि कागद करूं, गुरु-गुनि कहयो न जाय॥

हरिः ॐ तत्सत्! हरिः ॐ तत्सत्!! हरिः ॐ तत्सत्!!!

❑❑❑

अध्याय-5

॥श्री परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जी जीवन-दर्शन

सर्व क्लेशों से विहीन महासंत

संसार के सभी जीव पंच क्लेशों से पीड़ित होकर चौरासी लाख जीव जोन में भटक कर अपने प्रारब्ध को भोग रहे हैं। लेकिन तपस्वी एवं स्वाध्याय सम्पन्न पुरुष अपने इन साधनों से जिन्हें "क्रिया योग" के नाम से जाना जाता है। इन क्लेशों की निवृत्ति का प्रयास किया करते हैं।

बाबा ने अपने तप और स्वाध्याय के बल पर इन सम्पूर्ण क्लेशों पर विजय प्राप्त की थी तथा परम शान्ति को प्राप्त किया था।

"पातंजलि योग दर्शन" के साधन पाद/सु. 3/ में पंच क्लेशों का विवरण दिया गया है।

"अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशः"।

अर्थात् अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश ये पाँच क्लेश योग शास्त्र में वर्णित हैं। इन पाँचों से गुरुदेव रहित थे।

1. अविद्या से रहित संत मनोहरदास

माया के दो रूप पुराण शास्त्रों में बताए गये हैं। एक विद्या और दूसरी अविद्या। विद्या मोक्षदायिका है अर्थात् जीव की मुक्ति देने वाली है और अविद्या इस जीव को चौरासी लाख योनियों में डालने वाली, उसका पतन करने वाली माया है– माया का परिचय भगवन श्रीराम जी अपने अनुज लक्ष्मण के पूछने पर रामचरित्र मानस में इस प्रकार दिया है–

गो-गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

तेहिकर भेद सुनहु तुम सोऊ। विद्या अपर अविद्या दोऊ॥

अविद्या को अत्यंत दुष्ट और दुःख रूपा बतलाया गया है। जिसके कारण यह जीव संसार रूपी कुएँ में पड़कर नाना प्रकार के दुःखों से परेशान होता है–

एक दुष्ट अतिसय दुःख रूपा। जा वस जीव परा भव कूपा॥

पंच क्लेशों में यह अविद्या ही प्रथम क्लेश है और अन्य चारों क्लेशों की मूल भी यही है क्योंकि अस्मिता, राग, द्वेष तथा अभिनिवेश ये चारों अविद्या के कारण ही उत्पन्न होते हैं और अविद्या (अज्ञान) के शान्त होते ही चारों का भी अस्तित्व समाप्त

हो जाता है। जीव को परम शान्ति प्राप्त हो जाती है।

अविद्या का मूल स्वरूप है–''विपर्यय ज्ञान'' अथवा ''मिथ्याज्ञान'', दूसरे शब्दों में अनित्य पदार्थों को नित्य मानना, अशुचि को शुचि (पवित्र) और दुःख को सुख समझना अनात्म तत्व में आत्म तत्व की प्रतीति होना।

बाबा साहब ने अविद्या के बन्धन को तप त्याग और स्वाध्याय/अखण्ड प्रणव के जप/ द्वारा तोड़ दिया था। संसार के समस्त पदार्थों और विषयों से अपनी मनोवृत्ति को खींचकर आत्म तत्व का साक्षात्कार किया था। उनकी आत्मा तथा अनात्मा, क्षेत्र एवं क्षेत्रज्ञ का सम्यक बोध था। जो पदार्थ हैं वे सब अनित्य और क्षण भंगुर हैं उनमें चित्त लगाना कहाँ की बुद्धिमानी है क्योंकि इस लोक एवं स्वर्गीय दिव्य भोग विलास सभी अनित्य एवं गन्धर्व नगर के सदृश्य असत हैं। ऐसा समझ कर उनका उन्होंने सर्वथा परित्याग कर दिया था। अतः अविद्या का प्रधान लक्षण है अनित्य और दुःखदायी भोगों को सुखदायी एवं स्थिर मानकर उसमें रमण करना, भोगों का संग्रह करना। बाबा ने अपने ज्ञान के आधार पर उपरोक्त सभी सांसारिक भोगों को योग मार्ग में बाधक समझकर त्याग दिया। उनका मन से भी चिन्तन नहीं किया, वे सदैव ब्रह्म में लीन रहा करते थे। भगवान श्री कृष्ण ने गीता के नवम् अध्याय में इस सम्पूर्ण संसार को–

अनित्यमसुखं लोकमिमं प्राप्य भजस्व माम॥ (9/33)

अर्थात् यह सम्पूर्ण संसार अनित्य है और सुख रहित है। मनुष्य शरीर प्राप्त करके उसे इन सांसारिक झूठे भोग विलासों में न लगाकर मेरे भजन में लगाओ।

बाबा को गीता का गहन अध्ययन था। भगवान के ये वचन उनकी समझ में पूर्णतः विश्वास के साथ बैठे थे। अतः वे अविया से छूटे हुए जीवन मुक्त महान संत थे। सांसारिक विषय वासनों को स्वरूप से भी त्याग दिया था क्योंकि इन सांसारिक पदार्थों का अगर मन से भी चिन्तन किया जावे तो मनुष्य को ये बाँध लेते हैं और उसका पतन कर डालते हैं। यथा–

''ध्यायतो विषयान् पुंसः संगस्तेषूपजायते। संगात्संजायते कामः
कामात्क्रोधोअभिजायते॥

क्रोधादृभवति संमोहः सम्मोहात्स्मृति विभ्रमः। स्मृति भ्रशाद् बुद्धिनाशो
बुद्धिनाशात्प्रणश्यति॥ *गीता (2/62, 63)*

अर्थात् विषय चिन्तन मात्र से सर्वनाश हो जाता है। इस बात को दृढ़ता से ग्रहण करके ''गुरुदेव'' अपने मन को हमेशा उस परम तत्व में लीन रखा करते थे।

उपर्युक्त विवरण से हमें यह ज्ञाल हुआ कि अविद्या का प्रथम लक्षण असत् को सत् मानकर उसमें रमण करना है। अर्थात् सांसारिक विषय भोग जो वस्तुतः है

अनित्य और क्षणभंगुर, उनकी सत्ता को सत्य स्वीकार करना तथा उनको भोगने में तत्पर होना ही अज्ञान है। इसके विपरीत अनित्य संसार को नित्य न समझकर अनित्य और दुःखदायी समझना ही "विद्या" है "ज्ञान" है। उन्होंने गीता के इस ज्ञान का आशय लिया और अपने जीवन में सांगोपांग रूप से उतारा तथा नित्य तत्व (ब्रह्म) का साक्षात्कार किया।

अशुचि अर्थात अपवित्र, हेय पदार्थों को शुचि (पवित्र) समझकर उनको प्राप्त करने का प्रयास प्राप्त कर उनका भोग करना तर्था संग्रह करना तथा उनके वियोग में अपने को परम दुःखी अनुभव करना अविद्या से ग्रसित जीव का दूसरा लक्षण है।

बाबा महाराज के कंचन (धन) एवं कामिनी (स्त्री) का सर्वथा त्याग किया था क्योंकि योगी के लिए ये दोनों ही वस्तु हेय हैं तथा योग में वाधक हैं। संसार के महान तपस्वी एवं साधकों की साधना को इन दोनों ने ही वहुत बाधाएँ उत्पन्न की हैं। ये दोनों ही अविद्या के शक्तिशाली अवयव हैं। इनको परम अपवित्र (अशुचि) समझकर गुरुदेव ने इनका त्याग किया।

मानव शरीर जो महान अपवित्र वताया गया है संसार के लोग उसे रात-दिन सजाने-संवारने में (फैशन परस्ती) में ही लगे रहते हैं, लेकिन बाबा को देह का कोई विशेष ध्यान नहीं था। वे जानते थे कि यह शरीर महान अपवित्र है, ऊपर से धोने सजाने से इसको पवित्र नहीं किया जा सकता। वे मन की पवित्रता पर विशेष ध्यान देते थे क्योंकि मनोविकार ही मनुष्य की साधना के शत्रु हैं। काया को माजने से मन के विकार दूर नडीं किये जा सकते हैं। "कबीर" की तथा अन्य संतों की तरह बाबा हुजूर भी बाह्य क्रिया, स्नान, चन्दन, माला तथा बाहरी जप की दिखाऊ क्रियाओं की साधना के लिए आवश्यक नहीं मानते थे–

"काया नाजसि कौन गुना, जो घट भीतर है मलिना"।

कहने का तात्पर्य है कि सांसारिक शौचाशौच से उनकी शुचिता न्यारी थी। मनुष्य शरीर की अत्यन्त अपवित्रता प्रत्यक्ष सिद्ध है। यह मनुष्य शरीर मल-मूत्रादि अत्यन्त दुर्गन्धित पदार्थो से लिप्त माता के उदर से उत्पन्न होता है। माता और पिता का अत्यन्त मलिन "रज" और "वीर्य" इस शरीर का उपादान कारण है। इससे मलमूत्र प्रस्वेद आदि अत्यन्त अपवित्र पदार्थ तो सर्वदा झरते रहते हैं। संसार के अपवित्र (अशुचि) समझे जाने वाले रक्त, मांस, हड्डी, कफ, पित्त आदि पदार्थों का यह मानों भण्डार ही है। ऐसा होने पर भी हमें इसे परम पवित्र मानकर इसे चन्दनादि सुगन्धित द्रव्यों से और वस्त्रालंकारों से इसे विभूषित कर फूले नहीं समाते। यह अशुचि को शुचि मान लेना अविद्या का लक्षण है।

बाबा महाराज की रहनी-सहनी क्रिया-कलापों से यह स्पष्ट दिखाई देता है कि वे इस शरीर को मलागार मानकर इसमें व्याप्त आत्मा में अचल स्थिर रहते थे।

माया के प्रधान रूप स्त्री शरीर में समस्त विश्व आसक्त हो रहा है। उसे परम सुन्दर मानकर वह इसे प्राप्त करने के लिए तन-मन और धन के साथ धर्म को भी त्याग देता है। मनुष्य शरीर वीभत्स और घृणास्पद होने पर भी इसे परम सुन्दर मानना और किसी स्त्री की सुन्दरता में अविवेक पूर्ण रीति के आसक्त होकर कामान्ध होकर उसके साथ रमण करना ठीक इसी प्रकार से है, जैसे मल-मूत्र की नाली में विहार करने वाला कोई क्रीड़ा हो।

बाबा के समकालीन लोगों का कथन है कि गुरुदेव ने आजीवन ब्रह्मचारी व्रत का पालन किया। वे "उर्धरता ब्रह्मचारी" थे। शास्त्रों में स्त्री सहवास को निन्दित कार्य कहा गया है और सन्यासी के लिए तो यहाँ तक कहा गया है कि वह काठ की वनी स्त्री मूर्ति की ओर भी दृष्टि न डाले। मानस में नारद को उपदेश करते हुए भगवान श्रीराम कहते हैं–

काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह के धारि।

तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, माया रूपी नारि॥ (अरण्य./43)

अर्थात् मोह (अविद्या) की सेना में काम, क्रोध, अहंकार लोभ शक्तिशाली सैनिक हैं, लेकिन सबसे अधिक दारूण दुःख देने वाली माया (अविद्या का स्वरुप) रूपी स्त्री है।

मोह (अज्ञान) रूपी जंगल के लिए स्त्री वसंत ऋतु के तुल्य है। विवेकी जन इसमें कभी भी रमण न करें क्योंकि यह अकेली ही मनुष्य की बुद्धि, वल एवं शील का नाश कर अधोगति प्रदान करती है, यह सम्पूर्ण अवगुणों की मूल है–

"अवगुन मूल सूल प्रद, प्रमदा सब दुःख खानि"। (अरण्य./44)

अतः अविद्या रूप इस कामिनी का योगी सर्वथा त्याग करते हैं और अज्ञानी अविद्या ग्रसित मूर्ख स्त्री में सुन्दरता और पवित्रता मानकर उसमें आसक्त हो अपना सर्वनाश करते हैं।

"जगद्गुरु शंकराचार्य" ने स्त्री शरीर को माँस और वसा का विकार बतलाकर उसमें आसक्त न होने का उपदेश किया है–

नारिस्तनभरनाभिनिवेशं, मिथ्यामायामोहावेशम्। एतन्मांसवसादि विकारं मनसि विचारय बारम्बारम्"॥ भज गोविन्दं, भज गोविदं मूढ़मते॥"

(चर्पटपंजरिकास्त्रोत्रम्)

अतः अशुचि मानव शरीर को परम अपवित्र मानकर गुरुदेव ने उसे हमेशा ईश भजन साधना का माध्यम बनाकर संसार सागर को सुखपूर्वक पार किया था।

कामिनी तथा कंचन को सर्वथा अनित्य एवं असुखकारी समझने वाले ही बुद्धिमान हैं। योगी पुरुष का इनमें सत्यत्व भाव नहीं होता, इनमें उसके मन की

वृत्ति कभी भी नहीं रमती। उनकी सांसारिक धन और स्त्रियों में–

"मातृ व्रत पर दारेषु, पर द्रव्य लोष्टवत"

अर्थात् संसार की स्त्रियों को माता के समान तथा सांसारिक धन दौलत को मिट्टी के ढेले के समान समझकर व्यवहार करता है। बाबा मनोहरदास जी महाराज की दृष्टि में धन दौलत एवं रुपया पैसे का कोई महत्त्व नहीं था। वे परम संतोषी वैराग्य सम्पन्न महापुरुष थे, क्योंकि–

"जब आवै संतोष धन, सब धन धूरि समान"।।

कामिनी की तरह कंचन भी माया (अविद्या) का ही एक अंग है। यह जीवों को सुखी एवं शान्त नहीं होने देती। सारा संसार धन-दौलत के लिए मारा-मारा फिर रहा है। क्या राजा क्या रंक सब धन दौलत की प्राप्ति के चक्र में घूम रहे हैं। लेकिन बिना धर्म के धन की प्राप्ति नहीं होती और संसार के अधर्म की वृद्धि हो रही है।

गुरुदेव कभी किसी से रुपये पैसे की भेंट स्वीकार नहीं करते थे। योगी पुरुष जानते हैं कि धन में अनेकों विकार भरे पड़े हैं। यह अनेक प्रकार के अनर्थों की जड़ है। साधक की साधना के प्रधान शत्रु कंचन और कामिनी ही है। अतः अपना कल्याण चाहने वाले योगी पुरुष धन और मान दोनों से सावधान रहते हैं। सारे दोषों के मूल धन को विकारवर्धक जान के गुरुदेव सदा अपने आत्मा में ही तृप्त रहा करते थे।

अनेक अनर्थ कर्मों के द्वारा कमाए धन को पवित्र समझना मिथ्या ज्ञान है। श्रीमद्भागवत में धन के दोषों को गिनाते हुए स्वयं श्री कृष्ण महाराज अपने परम भक्त उद्धवाजी से कहते हैं।

"स्तेयं हिंसानृतं दम्भः कामः क्रोधः स्मयोमदः।

भेदो वैरम् विश्वासः संस्पर्था व्यसनानि च॥

ऐते पंचदशानर्था ह्यर्थमूला मता नृणाम।

तस्मादलर्थमर्धारव्यं श्रेयोअर्थी दूरतस्त्यजेत॥

श्रीमद्भागवदत 11/23/18, 19

चोरी, हिंसा, झूठ, दम्भ, काम, क्रोध, क्षोभ, मद, भेद, वुद्धि, वैर, अविश्वास, स्पर्धा और स्त्री जुआ एवं मद्य (शराव) का व्यवसन, ये पन्द्रह दोष मनुष्यों में धन के कारण ही होते हैं। अतः श्रेयार्थी पुरुषों को इस अर्थरूपी अनर्थ को दूर से ही त्याग कर देना चाहिये।

गुरुदेव महान त्यागी और पर वैराग्यवान महान संत थे। अविद्या के दोनों रूपों कंचन एवं कामिनी को उन्होंने अपने जीवन में क्रिंचित मात्र भी स्थान नहीं दिया था।

पंच क्लेशों के संदर्भ में उपर्युक्त विदरण यह स्पष्ट करता है कि गुरुदेव ने पंच क्लेशों में प्रथम और महत्त्वपूर्ण क्लेश अविद्या को समाप्त कर दिया था। जो अन्य चारों क्लेशों की जननी है।

2. अस्मिता

पंच क्लेशों में अविद्या के बाद दूसरे स्थान पर है। शास्त्रों में ''अस्मिता'' का स्वरूप दृकशक्ति (दृष्टा अर्थात् पुरुष) और दर्शन शक्ति (बुद्धि) जो सर्वथा एक-दूसरे से सर्वथा भिन्न है, की एकता सी प्रतीत होना अस्मिता नामक क्लेश कहा गया है।

गुरुदेव की अस्मिता (अहंकार) का सर्वथा नाश होकर आत्म भाव में स्थिति हो गुरुदेव की अस्मिता/ अहंकार का सर्वथा नाश होकर आत्म भाव में स्थिति हो गई थी। ये हमेशा ''अलख पुरुष मूर्ति'' क ध्यान में मस्त रहा करते थे। वे आत्म ज्ञान सम्पन्न थे तथा सर्वात्मा के साथ एकाकार हो गये थे। उन्हें आत्मा एवं अनात्मा का सम्यक बोध हो चुका था। अतः अस्मिता के क्लेश को पूर्ण निवृत्ति हो चुकी थी।

यहाँ पर ''अस्मिता'' के विषय में विशेष उल्लेखनीय तथ्य यह है कि पुरुष (ब्रह्म) और बुद्धि (माया) वस्तुतः अत्यन्त विलक्षण तत्व है। पुरुष को गीता एवं उपनिषदादि शास्त्रों में कूटस्थ, शुद्ध चेतन तथा भोक्ता कहा गया है।

''चेतन अमल सहज सुखरासी'' और इसके विपरीत बुद्धि को परिणामी मलिन और जड़ बतलाया है। इन दोनों की अर्थात पुरुष और बुद्धि की अज्ञान (अविद्या) के कारण एकता (अभिन्नता) सी प्रतीत होना ही अस्मिता है। यह अस्मिता ही पुरुष के लिए भोग का कारण होती है। यह जड़ और चेतन की ग्रन्थि ही दुःखों का मूल कारण है। इसी के कारण नित्य, शुद्ध, चेतन अविकारी और कूटस्थ होकर भी पुरुष अपने को जड़ बुद्धि से भिन्न न मानकर अपने को कर्ता मान लेता है। कर्ता के साथ ही यह भोक्ता भी बन जाता है और चोर संसारी बन कर विविध प्रकार के कर्म चक्र और भोग चक्र में भमता रहता है। यहीं से इसके पतन की शुरुआत होती है। यह जड़ एवं चेतन की ''ग्रन्थि'' पड़ते ही यह सुखी एवं दुःखी बनता है

अस्मिता का स्वरूप वर्णन करते हुए ऊपर कहा गया है कि पुरुष और बुद्धि यद्यपि न्यारे-न्यारे हैं, लेकिन उनमें जो एकता सी भक्ति हो रही है यह मिथ्या ही है–

''जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनाई।''

यद्यपि यह तीनों कालों में मिथ्या आभास है लेकिन यह सत्य सा लगता है। अस्मिता के कारण ही ईश्वर का अंश जीव जड़ के साथ संसर्ग दोष को स्वीकार करके बंध जाता है।

गुरुदेव बाबा मनोहरदास ने उपर्युक्त ग्रंथि का भेदन कर अपने आत्म स्वरूप का साझात्कार किया था। अनात्म में आत्म वस्तु का आरोप कर जो अस्मिता रूप

क्लेश संसार को दुःखी-सुखी किये हैं वे उससे सर्वथा मुक्त थे। अपने को शुद्ध अमर अविनाशी ब्रह्मरूप न मानकर विनाशी एवं एक देशीय मान लेना, चेतन के स्थान पर अपने को शरीर रूप से जड़ मानना ही अस्मिता क्लेश है। रामचरितमानस में इस स्थिति का वर्णन गोस्वामी पाद ने इस प्रकार किया है–

सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनई न जाइ बखानी।
ईश्वर अंश जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी॥
सो माया बस भयऊ गुसांई। बंध्यौ कीर मरकट की नाई॥ [उत्तर काण्ड]

उपर्युक्त विवरण से यह स्पष्ट है कि यह जीव जो स्वयं ईश्वर का अंश है माया (अविद्या) के कारण अपने चेतन अमल और सहज सुखरूपी स्वरूप को विस्मृत कर के त्रिगुण भई माया से मजवूत वँध सा गया है-यहाँ पर बन्धन के दो उदाहरण दिये हैं–

"वँध्यौ कीर मरकट की नाईं" तोते का बन्धन और वानर का बन्धन स्वयं के माने का ही होता है। वे किसी के द्वारा वाँधे नहीं जाते, अपितु अपने को वँधा हुआ सा मान लेते हैं।

तोते पकड़ने वाले एक रस्सी में एक धिरनी सी वाँध देते हैं। जब तोता उस पर बैठता है तो वह नीचे की ओर घूम जाती है। तोता जो स्वयं ही उसे पकड़े रहता है नीचे की ओर घूम जाता है। उसे मिथ्या यह आभास हो जाता है कि मैं पकड़ा गया और अपने को वंधा हुआ समझ लेता है। वह चाहे तो उस धिरनी को छोड़कर उड़ सकता है लेकिन वह अपने आपको वंधा सा मान लेता है। यह अस्मिता का सुन्दर उदाहरण है।

दूसरा उदाहरण मरकट (वानर) वन्धन का है। एक संकरे मुँह के मटके में चने निकालने के लिए वानर ने हाथ डाला और अपनी मुट्ठी चनों से भर ली, जब बाहर निकालने लगा तो मुट्टी बंधी होने के कारण अटक गई। वानर ने समझ लिया कि मुझे इस मटके ने पकड़ लिया। वह दुःखी होने लगता है। ऐसे अज्ञान के कारण ही आभासित होता है। वह चाहे तो चनों का लोभ त्याग कर मुट्ठी खोल कर अपने को मुक्त कर सकता है लेकिन अविद्या के कारण अपने को बँधा हुआ सा मान लिया। यह जड़ चेतन के बीच जो ग्रन्थि है वह असत्य है लेकिन अविद्या के कारण सत्य सी जान पड़ रही है–

"जड़ चेतनहि ग्रन्थि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनाई।।

जब ते जीव भयऊ संसारी। छूट न ग्रन्थि न होय सुखारी॥

मानस (उत्तर काण्ड)

इस मिथ्या बन्धन से छूटने के लिए यह अनेकों उपाय करता है। लेकिन अस्मिता के कारण यह उल्टा उसमें फँसता चला जाता है। श्रुति पुराणों में जितने भी

जप, तप, व्रत, नियम आदि अनका उपाय कहे गये है। यह छूटने के लिए सबका सहारा लेता है। लेकिन जड़ शरीर में आत्म बुद्धि (देहाभिमान) के कारण उन शुभ कर्मों का अपने को कर्ता मान लेता है और उनके परिणाम का भोक्ता बन जाता है। इसके कर्तव्य एवं भोक्तृव्य का क्रम कभी समाप्त नहीं होता। यह अविद्या माया की प्रेरणा से काल, कर्म और तीनों गुणों (सत्व गुण, रजो गुण एवं तमो गुण) के घेरे से कभी मुक्त नहीं हो पाता।

हमारे गुरुदेव महान ज्ञानी और विज्ञानी महात्मा थे। उन्हें कभी किसी ने बाहरी क्रिया, जप, तप, व्रत, तीर्थ आदि का सहारा लेते नहीं देखा क्योंकि ये सब कार्य जड़ शरीर के द्वारा सम्पन्न होते हैं। आत्मा से इनका कोई सम्बन्ध नहीं। जब अविद्या शांत हो जाती है तो सभी शुभ एवं अशुभ कर्म शांत हो जाते हैं।

"त्यागहि कर्म शुभाशुभ दायक"

अस्मिता के कारण ही कर्म सम्पादन होते हैं। जब अपने को पूर्ण ब्रह्म जान लेता है तो फिर कर्म कहाँ।

बाबा ने अपने दृष्टा रूप को पहचान लिया था। दृश्य से वे सर्वथा न्यारे रहे क्योंकि तत्वतः दृष्टा और दृश्य कभी एक नहीं हो सकते तो अज्ञान (अविद्या) के कारण ही मान लिया जाता है।

दृष्टा की दृश्य रूप से सत्ता मान लेना ही बन्धन है, दृश्य के बस में होने के कारण ही यह (अविनाशी) बद्ध है। अगर यह अपने स्वरूप में स्थिर होकर दृश्य को मिथ्या जान ले तो यह मुक्त ही है।

हुजूर महाराज ने अपने स्वाध्याय और तप के द्वारा अस्मिता नामक क्लेश को शांत कर परमानन्द स्वरूप को प्राप्त कर लिया था।

3, 4. राग एवं द्वेष

पंच क्लेशों में अविद्या, अस्मिता के पश्चात् तीसरे व चौथे नम्बर पर राग एवं द्वेष नामक क्लेश आते हैं, जिनके कारण इस जीव का वंधन और दृढ़ हो जाता है। शास्त्रों में राग द्वेष का परिचय देते हुए कहा गया है कि सुखानुभव के पश्चात चित्त में सुख के संस्कार स्थिर हो जाते हैं। इस हमेशा सुख की अभिलाषा रहती है। इस सुख की अभिलाषा को ही "राग" कहते हैं। इसके विपरीत दुःखानुभव के अनन्तर चित्त में रहने वाली दुःख के निराकरण करने की इच्छा का नाम द्वेष है।

अशुभ कर्मों के फलस्वरूप इसे दुःखों की प्राप्ति होती है। जिससे यह जीव अनेक प्रकार की यम यातनाओं को भोगता है और इस जीवन में भी अनेक प्रकार की दुःखदायक परिस्थितियों से गुजरता है। दुःख भोग के अनन्तर इसके चित्त में दुःख के संस्कार स्थिर हो जाते हैं। यह हमेशा उन दुःखदायिक परिस्थितियों से दूर रहने की अभिलाषा करता है। जिसे द्वेष कहते हैं। ये राग और द्वेष क्लेश रूप हैं।

यह मानव को हमेशा दुःखी एवं सुखी करने वाले महान शत्रु हैं। हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी महाराज ने राग एवं द्वेष दोनों क्लेशों पर विजय प्राप्त की थी। वे सुखदायक एवं दुःखदायक दोनों परिस्थितियों में "सम" देखे गये। न उन्हें सुख की कामना थी न वे दुःख से व्यथित होते थे। उन्होंने ज्ञानाग्निी में सर्व कर्मों को भस्म कर दिया था वे प्रारब्ध को भोग कर समाप्त कर देने में विश्वास रखते थे। न तो उन्हें इष्ट वस्तु में राग था न अनिष्ट में द्वेष। वे राग द्वेष से सर्वथा रहित समता गुण से सम्पन्न महात्मा थे।

"योग वशिष्ट" में श्रीरामचन्द्र जी ने इन दोनों को महान रोगों की संज्ञा दी है।

"राग द्वेष महा रोगा भोग पूगाविभूतयः।"

वस्तुतः इन दोनों के वशीभूत होकर ही सब अर्थ कर्मों में जीव प्रवृत होता है और यह अविनाशी चोर दुःखों का भाजन बनता है। श्रीमद् भागवद् गीता में भगवान कहते हैं–

"इन्द्रियस्येन्द्रियस्यार्थे राग द्वेषो व्यवस्थितौ।

तयोर्न वशमागच्छेतौ ह्यस्य परिपन्थिनौ॥ गीता (3/34)

अर्थात् सभी इन्द्रियों के शब्दादि विषयों में राग और द्वेष स्थित रहते हैं अर्यात् इष्ट वस्तु में राग और अनिष्ट में द्वेष रहता है। अतः कल्याण कामी पुरुष को इन दोनों के वश में नहीं होना चाहिये। "कल्याण" अर्थात् मुक्ति के मार्ग में राग द्वेष नामक दोनों क्लेश महान बाधक और (परि पन्थी) विघ्न कारक होते हैं।

5. अभिनिवेश/ मरणभय-

पंच क्लेशों में अन्तिम क्लेश है "अभिनिवेश"। अभिनिवेश का तात्पर्य है "मरण का भय"। प्रत्येक प्राणी का सबसे बड़ा भय है मृत्यु से, कोई भी जीव चाहे कितना ही दुःखी और जीर्णकाय क्यों न हो जाये, लेकिन मरने का नाम सुनते ही उसके हृदय में महान भय उपस्थित हो जाता है। प्रत्येक प्राणी की यह अभिलाषा रहती है कि मैं हमेशा जीता रहूँ। कभी न मरूं। ऐसी इच्छा का नाम ही "अभिनिवेश" है।

गुरुदेव महान विवेकी एवं भगवद्भक्त महान संत थे। भय नाम की कोई सत्ता उनके चित्त को मलिन नहीं कर सकती थी। वे हमेशा सात नाम की शिक्षा देते थे और आत्मा के गुणवाची नामों का स्वयं भी ध्यान करते थे। "अभयनाम, अजरनाम" द्वारा वह यह उपदेश दिया करते थे कि यह आत्मा न कभी मरती है और न कभी बुढ़ी होती है, मरती तो यह विनाशी देह है। वे अपने को शरीर नहीं शरीर (आत्मा) मानकर रहते थे और आत्मा को कभी न जन्मने और न मरने वाला मानकर उसके सहज सच्चिदानंद स्वरूप में मग्न रहते थे। गुरुदेव को गीता का विशेष ज्ञान था। वे

सच्चे अर्थों में "सांख्य योगी" थे। उनकी दृष्टि में यह आत्मा–

"न जायते म्रियते व कदाचिन। नायं भुत्वा भविता वान भूयः॥

अजो नित्यः शाश्वतोअयं पुराणो। न हन्यने शरीरे॥ (2/20)

अर्थात यह आत्मा किसी काल में न जन्मता है और न मरता है अथवा न आत्मा होकर के फिर होने वाला है क्योंकि यह अजन्मा, नित्य शाश्वत और पुरातन है। शरीर के नाश होने पर भी इसका नाश नहीं होता।

बाबा महाराज ने अभ्यास और वैराग्य के द्वारा चित्त को एकाग्रता प्राप्त कर ली। वे सदैव प्रणय के जप में लीन रहा करते थे। एकाग्रचित्त से सच्चिदानन्द घन परमेश्वर के ध्यान द्वारा उन्होंने उपर्युक्त पंच क्लेशों को दग्ध कर दिया था। वे हमेशा "हरि शरणं" थे। भगवान की भक्ति से सारे क्लेश स्वतः ही शान्त होते हैं। समस्त वेदों के सार उपनिषद हैं। उपनिषदों का सार श्रीमद्‌भागवद्‌ गीता है और भगवद्‌ गीता का सार तत्व परम उपदेश प्रभु शरणागति है। भगवान का आदेश और सदोपदेश है–

"सर्व धर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं ब्रज।

अहंत्वां सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः॥ (18/66)

अतः उन्होंने सम्पूर्ण कर्मों का आश्रय छोड़कर परमात्मा की अनन्य शरणागति ग्रहण कर एकरूपता का अनुभव किया था।

हरिः ॐ तत्सत! हरिः ॐ तत्सत!! हरिः ॐ तत्सत!!!

❑❑❑

अध्याय-6

॥ॐ श्री गुरु परमात्मने नमः॥

बाबा मनोहरदास जीवन दर्शन

ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी

बाबा हुजूर के जीवनवृत को देखने पर हमें यह ज्ञात होता है कि अपने परम कल्याण की जिज्ञासा से सम्पत्र होकर तथा संसार के दुःखों से दूर अमर पद की प्राप्ति हेतु अपने योग्यतम ''गुरु'' की खोज की। जब इनकी स्वेच्छा प्रबल हुई तो कहते हैं कि- जहाँ चाह वहां राह इन्हें शब्द ब्रह्म एवं वेदों के परदर्शी विद्वान तथा परब्रह्म में परिनिष्ठित तत्व ज्ञानी गुरुदेव के दर्शन हुए। उन्होंने इन्हें अपने अनुभव द्वारा प्राप्त ब्रह्म-विद्या एवं उसके रहस्य को सांगोपांग समझा कर इन्हें भी ब्रह्म विद् बना दिया। अपने शिष्य की योग्यता एवं लगन से प्रभावित होकर ''गुरुदेव'' ने इन्हें ईश्वर का वास्तविक तत्व रहस्य समझाकर इन्हें ''विज्ञान'' सम्पन्न बना दिया। क्योंकि योग के गूढ़तम रहस्यों को प्राप्त करने के पूर्ण अधिकारी हैं। इन्हें ऐसा सोचकर अति गोपनीय ब्रह्म विद्या के रहरय को गुरुदेव ने इन्हें प्रदान किया–

गूढउ तत्व न साधु दुरावहि।

आरत अधिकारी जव पावहि॥

वास्तव में आप उस ज्ञान को प्राप्त करने के लिए योग्य अधिकारी थे। इसलिए अपनी गुप्ततम पूंजी को गुरुदेव ने इन्हें प्रसन्नतापूर्वक सौंपकर इन्हें ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न कर दिया।

अधिकारी भेद से श्रीमद्भागवत में तीन प्रकार के योग बतलाये हैं–कर्मयोग, ज्ञानयोग एवं भक्तियोग। इन तीनों योग मार्गों के अतिरिक्त संसार में और कोई चौथा कल्याण का मार्ग है ही नहीं। जितने भी साधन वेद और शास्त्रों में जीव के कल्याण के लिए लिखे गये हैं वे प्रकारान्तर से इन्हीं तीनों के ही अंग-उपांग मात्र है। संसारी जीवों को कर्मानुसार अनेक प्रकार की प्रकृतियाँ होती हैं। जिसकी जैसी वृत्ति होती है वह उसी ''योग'' का अधिकारी होता है। अपनी प्रकृति या स्वभाव के विरुद्ध ''योग'' की साधना कभी भी सफल नहीं हो सकती। हाँ, उसके द्वारा कोई हानि नहीं होती। जो लोग संसार में रचे-वसे है अर्थात् पूर्णरूपेण संसार और उसके आकर्षण में आसक्त हैं वे कर्मयोग के अधिकारी हैं। जो वैर वैराग्यवान हैं वे ज्ञानयोग के अधिकारी हैं तथा जो न अत्यन्त आसक्त हैं और न ही अत्यन्त विरक्त ऐसे स्वभाव के जीव भक्तियोग के अधिकारी होते हैं। श्रीमद्भागवत् में भगवान कहते हैं–

योगस्त्रयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेष्ठो विधित्सय।

ज्ञानं कर्म च भक्तिश्च नोपायो अन्यो अस्ति कुत्रचित॥

(श्रीम. 11-20-6)

गुरुदेव ने इनको षट् सम्पत्ति से युक्त परम् वैराग्यवान स्वभाव वाला जीव समझकर इन्हें ज्ञान-योग का अधिकारी माना और इन्होंने इसी मार्ग से अपने परम लक्ष्य ब्रह्म साक्षात्कार को प्राप्त किया। उपर्युक्त तीनों योगों के बारे में विशेष उल्लेखनीय तत्व यह है कि जीव के तीन शरीर होते हैं। ये तीनों स्थूल देह, दूसरी सूक्ष्म देह, तीसरी देह कारण देह होती है। ये तीनों ही इसी संसार से प्राप्त होती है, तीनों ही जड़ और संसार की सामग्री होती हैं। कर्मयोगी इन तीनों शरीरों को संसार की सेवा में लगा देता है, जब स्वयं इन तीनों से अपने को असंगमान लेता है तब यह ज्ञानयोग के अन्तर्गत आता है और स्वयं को भगवान को अर्पित कर देना "भक्तियोग" है। प्रत्येक मनुष्य को तीन शक्तियाँ प्राप्त होती है। करने की शक्ति, जानने की शक्ति एवं माननें की शक्ति। संक्षेप में इन्हें क्रियाशक्ति, ज्ञान शक्ति एवं विश्वास शक्ति कहा जा सकता है। तीनों योगों से सम्बन्धित ये तीनों शक्तियाँ ही जीव का कल्याण करने हेतु कही गई है। जो क्रिया प्रधान व्यक्ति है इन्हें संसार की सेवा करनी चाहिए वह कर्मयोगी है। अपने स्वरुप की जानकारी या आत्म अनुभव करना ज्ञान योग विषय है तया भगवान को ही अपना मानना, यह श्रद्धा विश्वास भक्ति योग का मूल है।

हमारे गुरुदेव बाबा श्रद्धा-विश्वास से सम्पन्न महात्मा थे। उन्होंने "ज्ञानयोग" द्वारा अपने कल्याण का मार्ग चुना। प्रारम्भ को साधना को देखते हुये लगता है कि हुजूर में मूलतः भक्ति के अंकुर थे। क्योंकि आप विष्णु सहस्त्रनाम के जप एवं श्रीमद्भागवत् गीता के स्वाध्याय में मग्न रहा करते थे। लेकिन आगे चलकर ये शुद्ध अद्वैत की ओर झुक गये एवं "ज्ञानयोग" जो आत्मबोधात्मक मार्ग है उस पर चलकर गुरुदेव के निर्देशानुसार आप साधना करके विज्ञान सम्पन्न हो गये। अन्त में इनके पूर्ण विरक्ति का भाव स्थिर हो गया। शास्त्रों में स्पष्ट लिखा हुआ है कि जो लोग कर्म एवं उनके फलों से विरक्त हो जाते हैं, जिन्हें कुछ नहीं चाहिए और जो परम वैराग्यवान होते हैं, वे ही सच्चे ज्ञानयोगपथ के पथिक होते हैं और जिनके चित्त में कर्मों के संसार भरे रहते हैं तथा कर्मों और उनके फलों में आसक्ति रहती है वे सकाम कामना वाले कर्मयोग के अधिकारी होते हैं।

लेकिन जो पुरुष न तो अत्यन्त विरक्त ही है और न अत्यन्त आसक्त ही सत्संग एवं स्वाध्याय से जिनके हृदय में भगवान के प्रति श्रद्धा-भक्ति उत्पन्न हो जाती है। वह भक्ति योग का अधिकारी होता है। उपर्युक्त विवरण से यह सिद्ध होता है कि बाबा श्री मनोहरदास जी महाराज" अपने बचपन से ही वैराग्य प्रधान स्वभाव वाले थे। इन्हें अपने माता-पिता से भक्ति के संस्कार मिले जरुर थे, लेकिन उनके वियोग ने इस असार संसार की आसक्ति को पूर्ण रुपेण निकाल कर इन्हें परम वैरागी बना दिया। आपके गुरुदेव ने इन्हें पहले इस संसार (माया) का नश्वर रूप समझाया

और फिर जीव का स्वरूप, तदोपरांत जीव-ब्रह्म की एकता का प्रतिपादन किया। इस प्रकार इन्हें शास्त्र "ज्ञान" जिसे वाचक "ज्ञान और पुस्तकीय ज्ञान" भी कहा गया है समझाया। लेकिन यही पर्याय नहीं। इन्हें स्वानुभव से प्राप्त गुप्त रहस्य को भी समझाया जो योग्य गुरुदेव की अपने शिष्यों को अन्तिम देन होती है। इन्हें "तत्वमसि" के द्वारा उस परम तत्व का निर्देश किया।

दोहा— तूही ज्ञान प्रकाश है चेतन-आतम् तात।

भेद-भाव अज्ञान का, सो भूल आप को जात॥

"तत्वमसि" महा वाक्य का तात्पर्य समझाते हुये गुरुदेव ने कहा कि (तत + त्वम् + असि) वह ब्रह्म तुझसे अलग नहीं "वह तू ही है! जिस तत्व को हम इस जड़ संसार में अपने जड़ अवयवों अर्थात् मन बुद्धि चिन्त एवं जडेन्द्रियों के द्वारा जिसे देखना, अनुभव करना तथा जानना चाहते हैं वह ईश्वर तत्व तू ही है। (त्वमसि) वह तेरे बाहर भीतर सभी जगह बर्फ में जल के सदृश्य व्याप्त है। जिसे तू अब तक इस संसार में इधर-उधर भटक कर अनेक प्रकार की क्रियाओं और अनुष्ठानों का सहारा लेकर यत्र-तत्र सर्वत्र ढूंढ़ रहा था। वह और कोई नहीं स्वयं तू ही है। तू स्वयं ही अपने को भूल गया था और स्वतंत्र होते हुये भी अपने को बन्धन युक्त मान लिया था वह सब अज्ञान के कारण था—

दोहा— आप भुलानौ "आप में" बंध्यौ आप में आप।

जो तू खोजत फिरे बाबरे, सो तू आपम आप॥

इस प्रकार गुरुदेव ने तत्वमसि आदि महावाक्यों के लक्ष्यार्थ को इन्हें समझाया तथा द्वैत रहित नित्य, अमल सच्चिदानन्द स्वरूप का बोध कराके इन्हें विज्ञान सम्पन्न किया। पाठकों एवं साधकों के ज्ञानार्थ यहाँ ज्ञान एवं विज्ञान पदों के रहस्य को लिखना आवश्यक हो गया। अतः ज्ञान और विज्ञान जो दोनों भिन्नताओं में शास्त्रों में प्रयुक्त हुये हैं इस प्रकार हैं। ज्ञान शास्त्रों के अध्ययन और सत्संग के द्वारा आध्यात्मिक जानकारी तो प्राप्त कर लें पर न तो उसके अनुसार तत्व (वास्तविकता) का अनुभव करें और न ध्यान अभ्यास तथा कर्मफल त्यागरूप साधन का ही अनुष्ठान करें ऐसी केवल शास्त्रों की पुस्तकीय जानकारी को "ज्ञान" कहा जाता हैं। आध्यात्मिक उन्नति के लिए ऐसी जानकारी आवश्यक तो होती है लेकिन तदानुसार क्रिया-अनुभव के अभाव में यह केवल भार स्वरूप ही होती है। बिना जानकारी के अभ्यास सफल नहीं होता। अतः शास्त्रों के अध्ययन से ईश्वर के बारे में जो अप्रत्यक्ष जानकारी होती है, वह ज्ञान के अन्तर्गत आती है।

भगवान के वास्तविक तत्व रहस्यों का प्रत्यक्ष अनुभव करना "विज्ञान" पद से जाना जाता है। ज्ञानी की अपेक्षा विज्ञानी की श्रेष्ठता का प्रतिपादन अनेक शास्त्रों में किया गया है। रामचरित मानस के उत्तर काण्ड में भगवान अपने प्रिय भक्त श्री काकभुसुण्डि जी को प्रसन्न होकर वरदान देते हैं—

सुनविहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन वसिहहि उर तोरें॥

भगति ज्ञान विज्ञान विरागा। जोग चरित्र रहस्य विभागा॥

जानत तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा॥

यहाँ पर भगवान के ज्ञान और विज्ञान से सम्पन्न होने का वरदान दिया। शास्त्र ज्ञान या वाचक ज्ञान मनुष्य की बुद्धि को कभी-कभी भ्रमित कर उसे वास्तविकता से दूर भी कर देता हैं। योग्य गुरुदेव की शरण लिए बगैर कोई कोरे शास्त्र ज्ञान के आधार पर अपना कल्याण नहीं कर सकता। क्योंकि विविध सान्प्रदायिक ग्रन्थों और विचारों को पढ़-सुनकर साधक की बुद्धि निर्णय नहीं कर पाती कि साधना का उचित पथ कौन सा है?

क्योंकि अनेक पुराणों शास्त्रों एवं विविध साम्प्रदायिक ग्रन्थों ने उस तत्व रहस्य को पूर्ण रूपेण गोपनीय रखा है और उसका सही-सही तात्पर्य नहीं खोला। सामान्य प्रज्ञा का पुरुष यह निश्चित नहीं कर पाता कि क्या करें क्या नहीं? अतः शास्त्र ज्ञान को "शब्द जाल" की तुलना देते हुए कहा गया है। "(शास्त्र ज्ञान) शब्द जाल महारण्यं चित्त भ्रम कारणम्" अतः "विनु गुरु होय कि ज्ञान" बिना योग्य पथ प्रदर्शक के कोई भी साधक आज तक सिद्धि नहीं प्राप्त कर सका है। कभी-कभी कोरे शास्त्र ज्ञानी की दुर्गति भी देखने को मिलती है।

दोहा– *ब्रह्म ज्ञान जान्यौ नहीं, कर्म दिये छिटकाय।*

तुलसी ऐसी आत्मा, सहज नरक को जाय॥

शास्त्रों में कर्म त्याग अर्थात सन्यास के विवरण को पढ़कर मूर्ख लोग कर्म धर्म को भूल बैठते हैं। और आलस्य में परजीवी बनकर संसार के टुकड़ों पर जीकर अपने को तत्वदर्शी सन्यासी समझकर अपना यह लोक एवं परलोक बर्बाद कर लेते हैं और इसके परिणामस्वरूप नरकों की विविध यातनाएँ झेलते रहते हैं। अतः ज्ञान अर्थात कोरी शास्त्रीय ज्ञान कभी कल्याण कारक नहीं होता। भगवान ने ज्ञानी की अपेक्षा विंज्ञानी को अपना प्रिय कहा है।

निज सिद्धान्त सुनाबऊँ तोही। सुनु मन धरू सब तजि भजु मोही॥

मम माया सम्भव संसारा। जीव चराचर विविध प्रकारा॥

सब मम प्रिय सब मम उपजाए। सबते अधिक मनुज मोहि भाए॥

तिन्ह में द्विज, द्विज महँ श्रुतिधारी॥ तिन्ह महुँ निगम धरन अनुसारी॥

तिन्ह महुँ प्रिय विरक्त पुनि ज्ञानी। ग्यानिहुते अति प्रिय विज्ञानी॥

भगवान ने अपना सिद्धान्त वर्णन करते हुए उपर्युक्त चौपईयों में सार रूप से यह बतलाया है कि यद्यपि यह चराचर जगत मेरी माया द्वारा उत्पन्न किया गया है, इसलिए भी जीव मुझे प्रिय है क्योंकि जीव, मात्र ही सनातन अंश है मेरे द्वारा

उत्पन्न हैं–लेकिन सभी योनियों की अपेक्षा मनुष्य मुझे अधिक प्रिय हैं। मनुष्यों में भी ब्राह्मण और ब्राह्मणों में भी वेद विद् शास्त्रज्ञ ब्राह्मणों को मैं अधिक प्रेम करता हूँ। लेकिन उन वेद विद् शास्त्रियों से भी मुझे वे अधिक प्रिय हैं जो तदानुसार अपना जीवन ढालते हैं तथा ज्ञान के साथ वैराग्यवान भी हैं। जिन्होंने इस संसार के समस्त विषय भोगों से आसक्ति हटाकर मुझे प्राप्त करने का दृढ़ निश्चय कर लिया है। अन्त में भगवान कहते हैं कि–

''ज्ञानिहुते अति प्रिय विज्ञानी''

अर्थात् जो अभेद रूप से मुझे अपनी आत्मा मानकर उसी में रमण करने वाले ब्रह्मनिष्ठ योगी तो मेरी आत्मा ही हैं वे मुझे सर्वाधिक प्रिय हैं।

हमारे पूजनीय ''बाबा'' श्री मनोहरदास जी महाराज ने अपनी आत्मा में परमात्मा का साक्षात्कार कर लिया था। सारे संसार को वे गुरु स्वरूप और अपने आत्म स्वरूप में ही एकाकार पाते थे। उन्हें, सच्चिदानन्द स्वरूप गुरुदेव स्वरूप ईश्वर का घट-घट में अनुभव हो गया था। वे स्वयं ब्रह्म स्वरूप हो गए थे। सच्चे अर्थों में वे विज्ञानी महात्मा थे। इन्होंने शास्त्रों-पुराणों का अध्ययन किया अवश्य था, लेकिन केवल कथाओं से अपने को ज्ञानी सिद्ध करना उनका उद्देश्य न था। उन्होंने वेदों एवं उपनिषदों श्रीमद्भागवद् गीता जैसे सदशास्त्रों को अपनी साधना और अपनी धारणा का आधार बनाया था। वे कभी भी पंडितों की भाँति वेद शास्त्रों की कोरी बातें नहीं करते थे और ना ही अपने ज्ञान का प्रदर्शन। उन्होंने उनके माध्यम से, अपनी ईश्वर सम्बन्धी (आध्यात्मिक) धारणा को मजबूत किया था। जो शास्त्र का अध्ययन केवल पांडित्य प्रदर्शन हेतु करते हैं। वे प्रायः संसार में सम्मान नहीं पाते। उनकी वाणी का श्रोता पर कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ता, क्योंकि उनकी करनी और कथनी प्रायः भिन्न होती है। उन्होंने जो ज्ञान की कथाएँ सीखी हैं, उनसे वे अपने पेट का पालन करते है। दुनिया को अपनी बातों से रिझाना और अपने को श्रेष्ठ ज्ञानी सिद्ध करना मात्र उनका उद्देश्य होता है। हम देखते हैं कि समाज में ऐसे विज्ञान विहीन (आचरण विहीन) पुरुषों को हास्यास्पद स्थिति होती–

ज्ञान कथा सीखी घनी, प्रश्न करै अतिगूढ़।
नारायन बिनु धारणा, व्यर्थ बकत है मूढ़॥

बिना ज्ञान की धारणा के ज्ञान का कोई महत्त्व नहीं कोरा श्रम मात्र ही है। अतः शास्त्र ज्ञान का प्रमुख उद्देश्य यह है कि हम ईश्वर के स्वरूप की जानकारी पढ़कर सुनकर, तदानुसार ''धारणा'' करें। अपने हृदय में उस स्वरूप की दृढ़ धारणा करते ही हमें उस तत्व का प्रत्यक्ष अनुभव होने लगता है। हमें परम शान्ति प्राप्त होती है।

हमारे गुरुदेव बाबा मनोहरदास जी ने ज्ञान-विज्ञान से सम्पन्न होकर अपने लक्ष्य को प्राप्त किया था। उन्होंने कहा नहीं, करके दिखलाया। संसार को जो उपदेश

व्यवहार द्वारा किया जाता है, वह स्थाई और प्रभावकारी होता है। करनी और कथनी में उनकी रत्तीभर भी अन्तर नहीं था। जो वे बाहर थे वैसे ही उदासीन हृदय, भगवन्निष्ठ उनका अन्तःकरण था। उनके दर्शन-मात्र से संशय छिन्न-भिन्न होकर परमशान्ति की प्राप्ति होती थी। उनके वचनों का श्रोता पर अमिट प्रभाव होता था। उनके वचन सदैव सत्य होकर रहते थे। उन्हें भूत-भविष्य एवं वर्तमान की यथार्थ जानकारी थी। वे सुनी सुनाई एवं पढ़ी-पढ़ाई बातों को न कहकर अपनी "साधुकड़ी ब्रजभाषा" में योग के गूढ़तम रहस्यों को खोल दिया करते थे। लेकिन उनकी वाणी के रहस्य एवं तात्पर्य को बहुत कम लोगों ने समझा, वे प्रायः एक बात कहा करते थे–

"मेरे मटा! गुरुन् का ज्ञान न्यारा" है तू समझता तो है नहीं" वास्तव में जो गुरुन का ज्ञान था, वह किसी वाणी का बुद्धि का विषय न होकर अनुभवगम्य था जो कहने और सुनने का विषय नहीं था–

दोहा– *भीखा बात अग्म्य की, कहे सुने की नायं।*

जो जानें सो न कहे, कहै सो जानैं नायं॥

वह गूढ़ रहस्य को एक विज्ञानी ही समझ सकता है क्योंकि जो ज्ञान, मन, बुद्धि एवं चित्त के माध्यम और इन्द्रियों के सहयोग से होता है वह वास्तविक ज्ञान (तत्व ज्ञान) नहीं होता। आभास मात्र होता है, उसके लिए सद्गुरु की कृपा आवश्यक होती है, गुरु का ज्ञान पुस्तकों में नहीं।

"वेद हमारे भेद हैं"। *"वेदन् में हम नांय॥"*

अर्थात् वेद उसके ज्ञान को नेति-नेति कहकर निरूपित करते हैं और मात्र उसका आभास मात्र देते हैं। संसार में जिसे ज्ञान कहा जाता है वह तो मात्र उसका बाह्य स्वरूप निर्देश मात्र है। वक्ता प्रायः सुनी हुई और पढ़ी हुई परम्परा से प्राप्त बातों का प्रकारान्तर से दिखाऊ और शोभा युक्त भाषा में बखान करके इधर-उधर लोगों का मनोरंजन मात्र करके उनकी जेब से धर्म के नाम पर धन का व्यापार मात्र करता है। उसे यह तत्व रहस्य की वास्तविक जानकारी स्वयं को भी नहीं होती। जो कुछ वह अपने भाषणों, उपदेशों में कंहता है, वह स्वयं उसका पालन नहीं करता। उसकी बातें किताबी और सात्विक मनोरंजन मात्र हैं। संत पुरुषों में तथा तत्वदर्शी पुरुषों में, उसकी बातों को ध्यान से नहीं किया जाता है। इसका मतलब यह है कि उसकी कथनी एवं करनी, उसके ज्ञान एवं क्रिया में बहुत अन्तर होता है।

दोहा– *करनी विनु कथनी कथै, अज्ञानी दिनरात।*

कूकर ज्यों भूँकत फिरैं, सुनी सुनाई बात॥

सन्तों ने अपनी बांणियों नें ऐसे जटिल स्वभाव वाले वक्ताओं, पंडितों और मुल्ला-मौलवियों की कड़े शब्दों मे खबर ली है। इस उपर्युक्त दोहे में इस बात को बतलाया गया है कि जो व्यक्ति बिना करनी (कर्तव्य कर्म के कथनी) ज्ञान की वातें करता है वह तो मूर्ख है, अज्ञानी है, उसका ज्ञान ही सही नहीं। उसकी वातों में ज्यादा दम नहीं। हमें ऐसे व्यक्ति की बात पर विश्वास होता नहीं और करना भी खतरे से खाली नहीं। क्योंकि जो बात कह रहा है, वह खुद उस पर स्वयं अमल नहीं करता उसका व्यक्तित्व जटित है। वह सरल स्वभाव का इन्सान नहीं। यहाँ मैंने सरल-स्वभाव और जटिल स्वभाट दो प्रकार के स्वभावों का विशेष रूप से उल्लेख किया है—इन दोनों में उतना ही अन्तर है, जितना जमीन और आसमान में अर्थात् दोनो विपरीत ध्रुव की बातें हैं, एक आसुरी सम्प्रदाय का व्यक्ति है, दूसरा दैवी सम्प्रदाय का।

जो व्यक्ति जैसा दूसरे से कहता है और स्वयं भी उसी रास्ते पर चलता है तो समझो कि वह सरल स्वभाव क है और कहता कुछ और कर्ता कुछ और तो आप स्वयं समझ सकते हैं कि वह कौन से सम्प्रदाय के सज्जन हैं।

हमारे हुजूर बाबा तो इन दोनों से ही विचित्र स्वभाव के महान् संत थे। उनके स्वभाव का वर्णन करना तो बड़े-बड़े शास्त्रज्ञ विद्वानों का भी विषय नहीं मेरे जैसा अल्पज्ञ कैसे इस विषय में अपनी लेखनी चलाने का साहस कर सकता है। हाँ जैसा कि मैंने हुजूर के समकालीन सेवकों एवं प्रत्यक्षदर्शियों से सुना है, और बालकपन में देखा भी है, अतः उनके स्वभाव का निरूपण करने की मुझे कुछ सुविधा मिल गई है।

लोगों का कहना है—कि आप कहते न थे करके दिखा दिया करते थे। आप के स्वभाव में करनी तो देखी गई लेकिन कथनी नहीं, या बहुत ही कम देखी गई। इसलिए उनका संत स्वभाव था जो अलौकिक और अनोखा था। अतः वे ज्ञानी नहीं विज्ञानी थे। उपर्युक्त समस्त विवरण का सार यह है कि हमारे गुरुदेव ब्रह्मनिष्ठ एवं विज्ञानी महात्मा थे। जो भी वह अपने मुख से कहते उस सबका श्रोता पर अमिट प्रभाव पड़ता। क्योंकि लोगों का उन पर पूर्ण विश्वास था। उनके प्रति मानवमात्र चाहे वो किसी भी वर्ण, जाति या सन्प्रदाय का क्यों न हो एक अटूट और अपार श्रद्धा थी। एसा क्यों था? क्योंकि लोग यह मानते थे कि जो इनके मुखार्विंद से शब्द निकल रहा है वह सीधा सत्यलोक से आ रहा है। इनकी काया के माध्यम से ब्रह्म ही बोल रहा, और यह अवश्य ही सत्य होकर रहेगा। इसको विधाता भी नहीं मेंट सकता। विज्ञानी की आवाज ब्रह्म वाणी ही है और ज्ञानी (पुस्तक कीट) को आवाज पर बहुत कम लोग विश्वास करते हैं। क्योंकि वह जटिल-व्यक्तित्व वाला है, विज्ञानी सरल स्वभाव अर्थात कथनी और करनी एक वाला है। एक ही शब्द अधिकारी भेद से न्यारा-न्यारा प्रभाव दिखलात है। ज्ञानी (वाचक ज्ञानी) अपनी ज्ञान की कथा में कहता है ''अहिंसा परमोधर्मा'' श्रोता भी सुन लेते हैं कि व्यास जी कथा में हिंसा

त्याग की बात कह रहे हैं, और वह बात अच्छी तरह याद भी कर लेते हैं ''अहिंसा परमोधर्मा:'' लेकिन व्यवहार में उनके कदम-कदम पर हिंसा देखने में आती है। उसकी कठोर-वाणी से लोगों के हृदय बिंध जाते हैं। उनके मन में भी लोगों को हिंसा उनको छलकपट से लूट लेने, उन्हें धोखा देने के विचार, धन की खातिर तन की खातिर, दूसरे का गला काट देने के विचार भरे रहते हैं। उसके कर्मों में भी हिंसा दिखाई दे जाती है। खोटे हृदय के लोग अपनी पत्नी, पुत्र, माता-पिता गुरु का घात करने में नहीं हिचकते। कहने का मुख्य सार यह है कि उनके मन-वाणी एवं कर्म अर्थात् मन वचन कर्म से जो हिंसा के पुजारी हैं। और कथा में पंडितजी से और धर्म ग्रन्थों में दोहे चौपाई और संस्कृत श्लोकों में इन बातों को पढ़ते हैं। लेकिन व्यवहार में परिवर्तन नहीं तो ऐसे ब्रह्मज्ञानी, झूंठे, लवार धर्म ध्वंजी लोगों के समुदाय वर्तमान में अधिकांश दिखाई दे जाएंगे। हमारे गुसांई तुलसी दास जी वहुत पहले लिखे गये–

दोहा– *ब्रह्म ज्ञान विनु नारि नर, कहहिं न दूसरी बात।*

कौड़ी लागि लोभ बस, करहि विप्र गुरु घात॥

इस दोहे का अर्थ सरल है। अतः पाठ्कों को अर्थ लिखकर अपनी विद्वता का प्रदर्शन करना मैं ठीक नहीं समझता क्योंकि स्वयं को विद्वान समझकर और दूसरों को मूर्ख समझना कोरे ज्ञान-गुमानियों का ही काम है। तथापि भावार्य निवेदन करने के अपने अधिकार को सुरक्षित रखते हुये मैं लिखना चाहूँगा कि अव स्त्री या पुरुष जिससे आप बातें करेंगे तो आपको सभी के मुख से ब्रह्मज्ञान की वातें सुनने को मिल जायेगी और विशेषता यह मिलेगी कि ब्रह्मज्ञान'' के अलावा आप उनसे दूसरी बात नहीं सुनोगे अर्थात्–

''ब्रह्म ज्ञान बिनु नारि नर'',

करहि न दूसरि बात॥

''कौड़ी लागि लोभ बस,

करहिं विप्र गुरु घात॥''

कैसी विडम्बना कथनी कुछ और करनी कुछ और। ब्रह्मज्ञानी जी कहते तो हैं, अहिंसा परमो धर्मा: ''सर्व खल्विदं ब्रह्म'' जैसा वेद वाणी की सारभूत बातें। लेकिन अगर हिसाब-किताब में एक कौड़ी का भी अन्तर पाया गया तो, ब्राह्मण हों या बाणियां, और गुरुजी हों या चेलाजी फौरन यानी घात कर दिया करते हैं। यह सब विवरण मैंने ''ज्ञानी'' (छद्म ब्रह्मज्ञानी'' के टिल स्वभाव का है और यह सब लिखने का मेरा एक ही तात्पर्य है कि हमारे गुरुदेव बाबा श्री श्री 1008 श्री मनोहरदास जी महाराज का स्वभाव निर्मल सरल था उनकी कथनी एवं करनी में एक प्रतिशत भी अन्तर नहीं था। ऐसा मैंने अनुभव किया है और संस्मरणों में सुना भी है। वे

सच्चे विज्ञानी थे उन्होंने वास्तविक ब्रह्मनिष्ठा को प्राप्त किया था। उनके व्यक्ति का प्रमुख गुण मन-वाणी की सरलता थी। वे निर्मल मन एवं सरल हृदय के ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी महात्मा थे। उपर्युक्त समस्त विवरण को लिखने का मेरा यही प्रमुख मन्तव्य है। विद्वतजन मुझे क्षमा करेंगे। क्योंकि मुझे पूर्ण विश्वास है कि वे क्षमा सिन्धु, दया-सागर और क्षमामंदिर ही होते हैं। मेरे ज्ञानी एवं विज्ञानी के स्वभाव निरूपण से यह अर्थ नहीं ग्रहण करें, कि ज्ञानी अर्थात जिसे मैंने पुस्तकीय या शास्त्रज्ञ कहा है पूर्णरूपेण लवार हैं, और उनकी कोई आवश्यकता ही नहीं। विज्ञानी की पूर्व कक्षा शास्त्रों के अध्यापन एवं अध्ययन द्वारा ईश्वर का परोक्ष ज्ञान प्राप्त करना ही है। वह साधारण कोटि के साधकों को पथ प्रदर्शक का कार्य करते हैं। उनमें गुरुजी के मुख से सूत्र रूप वताए हुए तत्व का ही विस्तृत रूप है (ब्रह्म अगर बीज है तो जगत उसका वृक्ष और ईश्वर अगर परमपिता है तो जीव उसका अंश'' प्रणव अगर शब्द ब्रह्म है तो वेद उसकी वाणी, और वही ''शव्द ब्रह्म'' कभी पश्यन्ति वाणी के रूप में विद्वानों तत्व दर्शियों और फकीरों के मुखार्विन्द से प्रकट सुनाई देता है। जो कुछ संतों-साधु पुरुषों और दरवेशों, पीरों, फकीरों के मुखार्विन्द से वाणियाँ निकली हैं वे साक्षात ब्रह्मवाणी समझो, क्योंकि ब्रह्म तो निराकार है उसके न हाथ है न पाँव है न मुख है न जिह्वा, अर्थात वह ब्रह्म–''सर्वेन्द्रिय विवर्जितम्'' है। इसका सीधा-सा तात्पर्य यह है कि ब्रह्म के एक भी इन्द्रिय नहीं होती है फिर ब्रह्म वाणी या अनहदनाद का स्वर हम तक कैसे आवेगा। शास्त्र कहते है कि वह अनोखा वक्ता भी है। वह वाणी सन्तों की काया का सहारा लेकर भक्तों साधकों एवं योग्य शिष्यों तक पहुँचती है। ब्रह्म हमेशा महापुरुषों सिद्धा-भक्तों एवं ज्ञान के साथ जो विज्ञान सम्पन्न हैं उनकी जबान से बोलता है। अगर ''ब्रह्म'' को अपनी अंश भूत जीवों को कोई विशेष सन्देश देना होता है तो अपने किसी बन्दे, अपने प्रेमी भक्त एवं विज्ञानी योगी की जिह्वा पर चढ़कर बोलता है।

''काया बिना ब्रह्म क्या बोले''।

''ब्रह्म बोले काया के ओले''।

जैसे–भक्तों की काया में उनके सीता राम बोलते हैं ठीक उसी प्रकार ज्ञानी-विज्ञानी योगियों की काया के पीछे से ब्रह्मवाणी ही बोलती है। अतः हमारे ''गुरुदेव बाबा'' जो ''वचन'' फर्माते थे, वो वेदान्त का सार होता था। उस वाणी में जीव मात्र के कल्याण का स्वर और सन्देश छुपा रहता था। आज भी हम उनकी अमर वाणियों को पढ़कर उस सुखदायक संदेश का लाभ उठाकर परम शान्ति का लाभ ले सकते हैं। यह हुई गुरु के ज्ञान की बातें अब शास्त्री लोगों, वेद पाठियों और आधुनिक कलयुगी विद्वत समाज के ज्ञान ध्यान, की बातें, जो सुनने में बहुत मीठी और परिणाम में भी अपार कल्याणकारी होती हैं। क्योंकि वह उनकी स्वयं की बात न होकर किसी शास्त्र-पुराण गुरु वाणी या कुरान बाईबिल की बातें ही हैं। जो सीधी ब्रह्मा गुरुदेवों या मौहम्मद साहब और ईशा, मूंसा के वचन मुखार्विद से जीवमात्र के

कल्याणार्थ निकली है। अतः उसे सुनकर भी हम आनन्दित हुये बिना नहीं रहते। हम स्वाध्याय में रोज गीता, रामायण और श्रीमद् भागवत'' के पाठ करते हैं हम नित्य ही गुरु वाणियों का पाठ, कुरान-बाईबिल का पाठ करते एवं सुनते हैं और आत्मशान्ति प्राप्त करते हैं। अतः धर्मग्रन्थों का वेदशास्त्रों का हमारे जीवन में बहुत प्रभावोत्पादक महत्त्वपूर्ण स्थान है। लेकिन जो अहिंसा परमोधर्मः गौतमबुद्ध के मुख से शोभायमान लगता था। जो गान्धी जैसे शुद्ध अहिंसावादियों की जबान पर शोभा पाता था वह आज के धर्मनिर्पेक्ष कलयुगी समाज के मुख से निकलता भी शोभा नहीं लगता। ऐसा क्यों है? क्या उपर्युक्त विचारों के आलोक में आप बता सकते हैं? क्यों नहीं आप अधिकांश महानुभावों का एक ही उत्तर होगा कि क्यों हमारी कथनी और करनी में साम्य नहीं है।'' हम कहते तो कुछ हैं और पर्दे के पीछे दुनिया से छुपाकर करते कुछ हैं। अतः हमारे कृष्णमुख, श्रीहीन हैं और हमारी वाणी में तेजस्विता नहीं, प्रभावोत्पादकता का अभाव है, हम ब्रह्म ज्ञान की बातें मुख से करके हाथों से विप्रगुरु घात'' भी करने में नहीं चूकते, बड़े कमाल के है, हम भी''।

हमारे गुरुदेव की मन, वाणी और कर्म एक था। जो मन में है, वही वचन में भी और ठीक वही वात कर्म में भी देखने को मिलती थी—

''लाला! हम भाव गति का खाते हैं,

अगर कुभाव का ग्रहण करें तो-

समझो, जीते जी मर गये'' (हुजूर के बचन)

यह किसी कविता की पंक्तियाँ नहीं हैं हमारे गुरुदेव की अमर वाणी है, जिसमें भाव का महत्त्व प्रतिपादन हुआ है। वे इसको कहते ही नहीं इस बात को उन्होंने अपने जीवन का अभिन्न अंग बना लिया था। अगर आपने प्रत्यक्षदर्शियों और भुक्तभोगियों के अनोखे संस्मरणों को ध्यान से पढ़ा है या उनकी जबान से सुना है तो आपको मेरे कथन (लेख) में कोई अतिश्योक्ति नजर नहीं पड़ेगी। श्री ब्रजलाल गुप्ता ''(विरजू भाई) ने मुझे एक संस्मरण सुनाया'' कि एक बार हुजूर कैलाहल बाई की दूकान (वर्तमान में कढ़ीवालों की हवेली के पूर्वी भाग में शर्मा टेलिवीजन वाले) के सामने एक पटिया पर सिंहासन पर विराजे हुये थे। मेरे मन में गुरुदेव को पाव भर (आज की माप में ढाई सौ ग्राम) दूध ले जाकर अर्पण करने का विचार आया। लेकिन मन के इस शुभ संकल्प में बुद्धि ने कुछ संशोधन करने का प्रस्ताव रखा ''सोचा कि दुनियां क्या कहेगी? कि कैसा कंजूस कि गुरुदेव को पाव भर की कुल्ली में दूध लेकर चला है। बुद्धि के इस विचार को मन में भी मान लिया और आधा सेर की मात्रा में दूध बनवा लिया ले जाकर हुजूर के सामने अर्पण कर दिया। हुजूर वड़े ही कौतुकी थे। मेरे हाथ से कुल्ला लेकर अपने हाथ की अंगुलियों से कुल्ले को मापने लगे, सही माप तौल जब पूरी हो गई तो उससे आधा दूध अपनी कटोरी में उड़ेल कर कहा ''ले! यह तेरा हिस्सा है।''

''हुजूर यह मैं सब आपके लिए ही लाया हूँ आप आरोगिए''। ''नहीं मेरे बेटा यह तेरा भाग है इसे तू पी ले।''

हुजूर क्या कह रहे हैं और क्यों कह रहे हैं? इसे मैं खूब समझ रहा था, क्योंकि मुझे वे अपनी वाणियों का तत्व रहस्य कई बार स्पष्ट कर दिया करते थे, मैं समझ गया कि मेरे मन का भाव इन्होंने जान लिया है। मेरे मन में प्रथम पाव दूध ही ले चलने का भाव आया था। सो पाव दूध तक तो अमृत दान और लोक लाज के डर से कुभाव से पाव भर और बढ़ाया था सो एक ब्रह्मनिष्ठ संत की दृष्टि में ''सुरा-दान'' के सदृश्य ही होता है। और कहीं चोरी या अन्याय से कमाए धन द्वारा लाया गया दमन और दवाव वश किया गया दान ''रक्त दान'' या हलाहल विष का ही दान समझो। ऐसे दाता और भोक्ता दोनों का ही नाश होता है। अतः वे अन्तर्यामी और घट-घट की जानन हारे त्रिकालज्ञ ब्रह्मनिष्ठ पूर्ण ज्ञान विज्ञान सम्पन्न वैरागी तथा वीतराग शिरोमणि थे। उनकी दृष्टि में वस्तु का कोई महत्त्व न था ''भाव'' का महत्त्व था।

''लाला! हम भावगति का पाते हैं कुप्रभावगति का अगर ग्रहण करें तो समझो जीते जी ही मर गए'' यह बात कोई साधारण रहस्य की बात नहीं यह साधकों एवं सिद्धों की आचरण संहिता'' का एक मंत्र समझो। अगर साधकों को अपने लक्ष्य की सिद्धि करनी है तो इस सिद्धान्त को गांठ बांध लेनी चाहिए कि अगर कोई भक्त जगतपूर्ण भाव से कोई वस्तु दान करे और उसके भाव में पूर्ण श्रद्धा भक्ति का भी योग है, तो शिष्य के कल्याणार्थ शरीर यात्रा के निर्मित्त यथा आवश्यक भेंट स्वीकार करें। लेकिन अन्याय से कमाए धन से सर्वथा अपने को बचाएँ, नहीं तो सारी योग साधना उसी दिन यथा स्थिति पहुँच कर पतनोन्मुख हो जावेगी। यह भाव गति और कुप्रभावगति के दान का प्रभाव है। इस प्रकार हमारे गुरुदेव की अमर वाणियों से आध्यात्म छः शास्त्रों तथा सब ग्रन्थों का सार तत्व छुपा रहता था। हम उनकी अटपटी भाषा में अभिव्यक्त साधना सूत्रों के मर्म को नहीं समझ सके, क्योंकि उनके-

''गुरुन् का ज्ञान न्यारा है, तू समझता नहीं, मेरे बेटा।'' अब तक हमारे लिखने का तात्पर्य यह था कि गुरुदेव एक ब्रह्मनिष्ट विज्ञानी महात्मा थे। यह बात उनकी रहनी-सहनी क्रिया व्यवहार से स्पष्ट होती थी। प्रस्तुत निवेदन में मैंने यह स्पष्ट किया है कि विज्ञानी पद एवं विज्ञानी पद से किस प्रकार के व्यक्तियों को समझना चाहिये। भगवान की दृष्टि में ज्ञानी की अपेक्षा विज्ञानी का दर्जा ऊँचा है। वह ज्ञानी (शास्त्र ज्ञानवालों) की अपेक्षा विज्ञानियों (तत्वेत्ताओं और ब्रह्मनिष्ठ) को अधिक प्यार करते हैं।

श्रीमद् भागवत्गीता में भी भगवान श्री कृष्ण जी ने अपने परमप्रेमी एवं सखा अर्जुन को ज्ञान एवं विज्ञान का सम्पूर्णता से बोध कराते हुए कहा,

ज्ञानं ते अहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्या नेह भूयो अन्यज्ज्ञातव्यमवशिष्यते॥7-2॥

तेरे लिए मैं विज्ञान सहित ज्ञान सम्पूर्णता से कहूँगा, जिसको जानने के बाद फिर यहाँ कुछ भी जानना बाकी नहीं रहेगा। भगवान ने इसे पूर्ण श्लोक में अर्जुन से कहा था कि मैं तुझे ऐसे रहस्य की बात बतलाने जा रहा हूँ जिससे तू मेरे समग्र रूप को जान सकेगा। ध्यातव्य तथ्य यह है कि भगवान को समग्र रूप से विरले ही भगवान के प्रिय भक्त ही जान पाए हैं और जो भी भगवान के तत्व रहस्यों को जानता है, वह भगवान की ही कृपा का कोई पात्र ही होगा। रामचरित मानस के अयोध्या काण्ड में बाल्मीकि आश्रम में जब प्रभु राम जी पहुँचे तो उन्होंने भगवान के स्वरूप को "वचन अगोचर बुद्धि पर वतलाया। श्रीराम के वास्तविक ब्रह्म स्वरूप का न तो वाणी से कथन किया जा सकता है और न चित्त (मन) का ही वह विषय है। बुद्धि भी उसके बारे में विचार करने में अपने को असहाय पाती है। यहाँ तक कि उसे (भगवत् स्वरूप) को अविगत, अकथ और अपार मानकर वेद वाणी भी नेति (ऐसा नहीं) नेति (ऐसा भी नहीं) कहकर विश्राम पाती है–

दोहा– *रामस्वरूप तुम्हार, वचन अगोचर बुद्धि पर।*

अविगत, अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥

ऐसे अकथनी अपने स्वरूप को सम्पूर्णता के साथ भगवान कृष्ण अपने प्यारे सखा-भक्त और शिष्य अर्जुन को समग्र रूप से वतलाने के लिए कहते हैं–

ज्ञान ते अहं सविज्ञानमिदं वक्ष्याम्यशेषतः।

यज्ज्ञात्वा नेह भूयो अन्यज्ज्ञातव्यम व शिष्यते॥ 7-211

तेरे लिए मैं विज्ञान सहित ज्ञान को सम्पूर्णता से कहूँगा इसको जान लेने के पश्चात कुछ भी जानना बाकि नहीं रहेगा। "ज्ञान और विज्ञान" के जान लेने वाला पूर्ण ब्रह्म निष्ठ सच्चिदानन्द स्वरुप हो जाता है। लेकिन ज्ञान सहित विज्ञान का बोध बिना गुरुदेव की कृपा, बिना और हरि कृपा से नहीं हो सकता। जिसको भी भगवान चाहें अपने भेद को लखा सकते हैं, और भगवान के स्वरूप का बोध होते ही जीव स्वयं भगवत् स्वरूप में लीन हो जाता है। भगवान के समग्र रूप को न तो ब्रह्मा ही जानते हैं न विष्णु-शिव ही इसका कारण यह है कि दृश्य कभी दृष्टा नहीं जान सकता। दृष्टा ही दृश्य को देखने-हारा और जानन-ड़ारा होता है। वह तो "विधि-हरि-सभु नचाव निहारे। हैं, कटपुतली अपने नचाने वाले अपने निर्माण कर्ता को नहीं जान सकती है। एक स्थान पर भगवान शिव-पार्वती माता से भगवान के प्रभाव को समझाते हुए कहते हैं–

उमा दारुजोषित की नांई।

सबहि नचावत राम गुसांई॥

भगवान सम्पूर्ण संसार खण्ड ब्रह्माण्डों के जीवों को उसी प्रकार नचा रहे हैं जैसे दारू जोषित (कठपुतली) को कठपुतली का कलाकार उसे अपनी अंगुली के इशारे पर नचाता है। वाल्मीकि जी, भगवान के अनिर्वचनीय स्वरूप के बारे में कहते हैं कि प्रभो–

जग पेखन तुम्ह देख निहारे। विधि हरि संभ नचाब निहारे॥

तेउ न जानहि मरमु तुम्हारा। औरू तुम्हहि को जाननिहारा॥

तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनन्दन।

जानहि भगत भगतउर चंदन॥

आपका स्वरूप सच्चिदानन्द स्वरूप है। अतः उसे आपके सच्चिदानन्द विग्रह को विकारों से रहित ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी ही जान सकते हैं–

चिदानंदमय देह तुम्हारी।

विगत विकार जान अधिकारी॥

इस प्रकार भगवान अपने तत्व रहस्य एवं अपने समग्र रूप को जानने के लिए अर्जुन को ज्ञान एवं विज्ञान के भेद को समझाते हैं। संसार भगवान से ही उत्पन्न होता है और भगवान में ही समा जाता है क्योंकि भगवान ही इस संसार के महाकारण हैं ऐसा मानना ज्ञान हैं। भगवान के अतिरिक्त और कोई चीज है ही नहीं, सर्व रूपों में भगवान ही समाए हुए हैं, अर्थात् भगवान ही सब कुछ बने हुये हैं येसारा जन चेतन स्वरूप अखिल विश्व भगवान का ही स्वरूप है तथा मैं स्वयं भी भगवान ही हूँ–ऐसा अनुभव को जाना ही विज्ञानी है।

श्रीमद् भागवत् गीता में अनेक स्थलों पर इसी तत्व रहस्य को खोला है अपरा और परा प्रकृति मेरी हैं। इन दोनों के संयोग से इस जड़ चेतन स्वरूप सम्पूर्ण प्राणियों की उत्पत्ति होती है, मैं स्वयं इस जगत का महा कारण हूँ ऐसा कहकर भगवान ज्ञान को समझाते हैं।

मेरे सिवाय कुछ है ही नहीं सूत के धागे में उसी सूत की मणियों की तरह सब कुछ मेरे में ही ओत-प्रोत हैं। ऐसा कहकर भगवान ने विज्ञान का निरूपण किया है। इसके अतिरिक्त जल में रस, चन्द्र, सूर्य में प्रभा मैं हूँ सम्पूर्ण भूतों का सनातन बीज मैं हूँ सात्विक राजस एवं तामसिक भाव मेरे में ही होते हैं ऐसा कहकर ज्ञान बतलाया है। ये मेरे में और मैं इनमें नहीं हूँ ऐसा कहकर ठाकुर जी विज्ञान का पाठ सिखाते है। अर्थात सब कुछ में ही मैं हूँ क्योंकि इन सात्विक और तामसिक गुणों की कोई स्वतंत्र सत्ता नहीं है। इसलिए सब कुछ मैं ही मैं हूँ। ऐसा कहकर आपने विज्ञान बताया। जिसने मेरे अतिरिक्त गुणों की अलग से सत्ता मान ली वह मेरी माया से मोहित नहीं होता, बल्कि ये गुण भगवान से ही होते है और

उनमें ही लीन हो जाते हैं, ऐसा जानते हुए मेरी शरण होता है वह गुणमई माया का अतिक्रमण कर जाता है। भगवान के शरण होकर भगवान का भजन करने वाले चार प्रकार के भक्त होते हैं–

चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनो अर्जुन।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षम्॥ (गीता. 7/16)
तेषा ज्ञानी नित्ययुक्त एक भक्तिर्विशिष्यते।
प्रियोहि ज्ञानिनों ऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥ 7/16, 17/1

हे भरत वंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! पवित्र कर्म करने वाले अर्थार्थी आर्त, जिज्ञासु और ज्ञानी (अर्थात् प्रेमी) ये चार प्रकार के मनुष्य मेरा भजन करते हैं। अर्थात् मेरी शरण होते हैं। इन चारों भक्तों में मेरे में निरंतर लगा हुआ, अनन्य भक्ति वाला ज्ञानी (अर्थात प्रेमी भक्त) श्रेष्ठ है यों कि ज्ञानी भक्त के लिए मैं अत्यन्त प्रिय हूँ और वह भी मेरे को बहुत प्यारा लगता है। वह तो स्वयं मेरी ही आत्मा हैं। ऐसा कहकर भगवान ज्ञान का निरूपण करते हैं। **लेकिन जिसको** "वासुदेवः सर्वम" **अर्थात सब कुछ वासुदेव** ही हैं **ऐसा अनुभव हो जाता है। वह महात्मा** अत्यन्त दुर्लभ **है। ऐसा कहकर विज्ञान बतलाया है। वह विज्ञानी महात्मा हजारों में कोई एक होता है। हमारे बाबा मनोहरदास जी महाराज इस प्रकार के** ब्रह्मनिष्ठ विज्ञानी **महात्मा थे। उन जैसे संत इस संसार में बिरले ही होते हैं। उन्हें अपने अन्दर** सारा **संसार और सारे संसार में अपनी आत्मा, ही दिखाई पड़ती थी।**

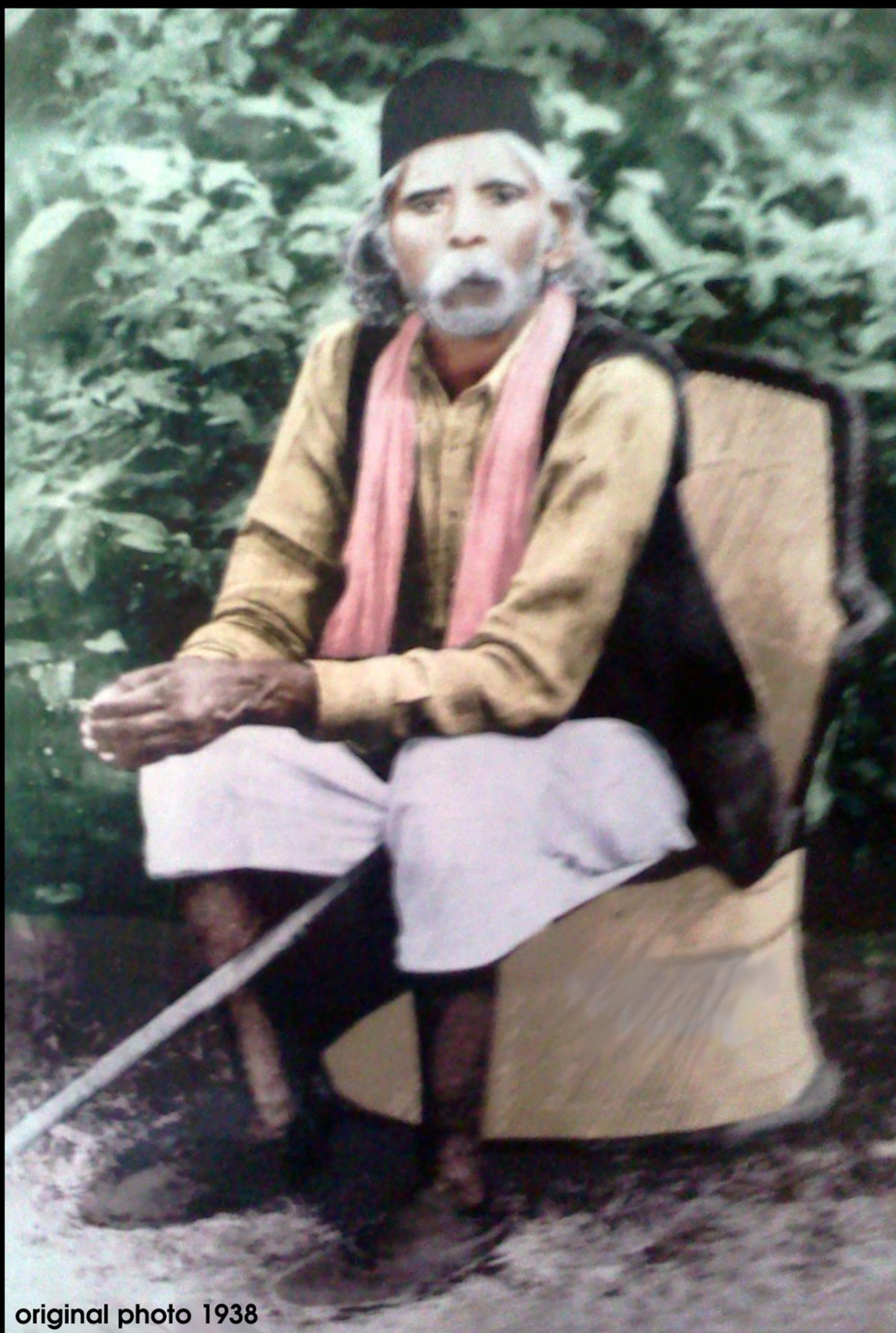
बहूनां जन्म नमन्ते, ज्ञानबान्मां प्रपद्यते।
वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥ गी. 7/1911

"बहुत जन्मों के अन्त में अर्थात मनुष्य जन्म में सव कुछ परमात्मा ही है, ऐसे भाव वाला महात्मा मेरे शरण होता है, वह अत्यन्त दुर्लभ है।

गुरुब्रह्मा, गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः।
गुरुः साक्षत्परं ब्रह्म, तस्मै श्री गुरुवे नमः॥

॥ हरिः शरणम्, हरिः शरणम्, हरिः शरणम्॥

❑❑❑



श्री श्री १००८ श्री बाबा मनोहर दास जी महाराज